सहज-वाणी

भाग ४

ॐ आनन्द! ॐ आनन्द!! ॐ आनन्द!!!

卐 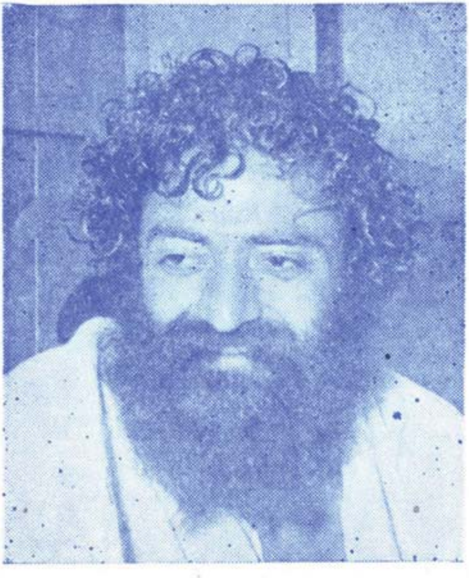 卐

"जिसको जानने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता, जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रहता जिस सुख से अधिक कोई सुख नहीं और जिस लाभ से अधिक कोई लाभ नहीं, उस आत्मलाभ को प्राप्त करने में देर क्यों करते हो प्यारे ?"

परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज

B.D. GOYAL

श्री धर्मदास का घर
मणीनगर,
४–१–७६
रविवार

शाम के सात बजे हैं। अभी एक घंटापूर्व स्वामीजी का प्रवचन अहमदाबाद शहर के प्रसिद्ध मंदिर 'वेदमंदिर' में था। वहीं से लौटते समय श्री धर्मदास के बहुत भावपूर्ण आग्रह के कारण उनके घर पधारे हैं। धर्मदास के घर में अड़ोस–पड़ोस के बहुत लोग स्वामीजी के दर्शन हेतु आए हुए हैं और स्वामीजी के सम्मुख कुछ अमृत वचन सुनने के लिये बैठ गए हैं। स्वामी जी सबकी तरफ एक विहंगम दृष्टि घुमाकर अपनी मधुर वाणी में बोलना प्रारम्भ करते हैं—

स्वामीजी :–संसार में सबको सुख-दुःख आता रहता है। सब दिन एक जैसे नहीं होते। सब रातें एक जैसी नहीं होती। संसार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं, कोई राजा ऐसा नहीं, कोई प्रजा ऐसी नहीं, कोई वस्तु ऐसी नहीं जो सदा एक जैसी बनी रहे। सबमें परिवर्तन आता है। सबमें उतार चढ़ाव आता है। अतः जब दुख आता है तो संसारी व्यक्ति दुःखी होता है। पर भगवान का भक्त धैर्य रखकर उसे सहन कर जाता है। वह विचलित नहीं होता। वह सोचता है--'भगवान मेरी परीक्षा

ले रहे हैं या मेरे ही पूर्व किये गए कर्म अपना फल दे रहे हैं । मेरे कर्म बीत रहे हैं । भगवान मुझसे खेल रहे हैं ।'

कुछ लोग ऊपर से सुखी दिखते हैं, पर अन्दर उनकी रग रग में दुःख भरा रहता है । कल मेरे पास एक व्यक्ति आया था । वह लाखों में खेलता है । उसके पास कारें हैं, बङ्गले हैं । उसने कहा—'स्वामीजी ! दर्शन के लिये सिर्फ ५ मिनट दे दीजिये ।' मैंने खिडकी में से कहा कि आपको ५ मिनट दूँ तो आपके पीछे जो खड़ा है (एक निर्धन व्यक्ति) उसको कितना समय दूँ ? उसने कहा- 'उसको भी पाँच मिनट दे दीजिये ।' मैंने कहा 'नहीं, दोनों को दो-दो मिनट दूँगा । कहो तो दरवाजा खोलूँ ?' जब वह अन्दर आया और कुछ बातचीत की तो उसने अंत में कहा—"न धन में सुख है, न यश में सुख है, न मिनिस्टरी आदि की सत्ता में सुख है । इधर जो मजा है, वह तो हमने देखा ही नहीं । इतनी जिन्दगी तो गुजर गई । अब तो स्वामी-जी आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि आगेकी जिन्दगी अच्छे कर्म करते हुए गुजरें ।'

सदैव प्रसन्न रहना चाहिये । जीना उसीका सार्थक है जो प्रसन्न रह सके । जो प्रसन्न नहीं रह सकता वह न जी सकता है, न मर सकता है । अल्पबुद्धि व्यक्ति दूसरों को सुखी देखकर स्वयं को दुखी मानता है । शरीर पर फोड़ा या नासुर हो जाय

तो वह या तो ऑपरेशन करके निकाल दें तो आराम हो जाय या ठीक हो जाय तो आराम हो । ऐसा ही दुखी व्यक्ति का हाल होता है ।

कभी कभी पुण्य का फल भी दुःख होता है । दुःख यदि भगवान के रास्ते आगे बढ़ाता है तो समझो वह किसी पुण्य का ही फल है । जिसको ऐसा दुःख नहीं पड़ता, समझो वह अभागा है ।

कितनी चोटें खाकर, कितने दुःखों में से गुजर कर मिट्टी घड़ा बनती है ? पहले कुंभार उसको रौंदता है । उसको पीट पीट कर घड़े का आकार देता है । उस घड़े को आग में तपाता है। तपाने के पश्चात् उसको टकोर टकोर कर उसकी मजबूती देखता है । बाजार में ग्राहक भी उसको टकोर कर खरीदता है । घर में भी उसको गृह—स्वामिन टकोर कर देखती है । फिर उसमें पानी भरती है । उतनी चोटें खाकर वह घड़ा अपने में पानी रखने की शक्ति प्राप्त कर लेता है । इसी प्रकार जो दुःख की चोटें सह सकता है, वह अपने अन्दर भगवान को धारण करने की ताकत प्राप्त कर लेता है । दुःख में बड़ा राज होता है ! उस राजा को हम लोग समझ नहीं पाते । कुंती माता इसीलिये भगवान कृष्ण से दुःख मांगती है ।

पाँडवों को जब अपना राज्य मिल जाता है और सब सुव्य-वस्था हो जाती है तब भगवान कृष्ण कुंती से कहते हैं कि अब

मैं जाऊँ। आखिरी मुलाकात है, कुछ मांगना हो तो मांग लो। तब कुंती ने जो मांगा वह किसी ने नहीं मांगा। वह बोली- "हे भगवान! मेरे ऊपर राजी हो तो एक चीज दे जाओ। वह चीज है, 'दुःख'। मुझे दुःख दे जाओ।" भगवान ने देखा कि इसने १२ साल बनवास भोगा। दुर्योधन के दिये हुए दारुण दुःख भोगे। इसको भूखा-सूखा रहना पड़ा। कांटों और पत्थरों पर सोना पड़ा। इतना कष्ट भोगने के पश्चात् इसको राज्य दिलाया है। फिर भी कष्टों से इसका पेट नहीं भरा? उन्होंने इसका कारण पूछा तो कुंती बोली, "भगवान! दुःख था तभी तुम साथ में थे। अभी सुख है तो तुम जा रहे हो। हमको इतना दुःख नहीं पड़ता तो तुम्हारा सहारा नहीं मिलता। लोगों का सहारा मिलता पर लोकेश्वर का सहारा नहीं मिलता।"

दुःख के राज को समझकर, समझदारी से दुःख भोगें, तो वह बड़े बड़े अमीरों से भी ज्यादा अमीर है। अहमदाबाद के भिखारी भी जो कहते हैं (विनोद में, भिखारिन की नकल करते हुए) ऐ बहन, जरा रोटी का टुकडा दे, अमीर हैं। साहब की तनख्वाह ४०० रुपये हैं तो भिखारी की ६०० रुपये। भले ही वह भिखारी दिखे पर उसके पास बहुत पैसे मिलेंगे। क्यों ठीक है न?

सब हँसते हैं।

स्वामीजी– एक फकीर था। नंगे बदन रहता था वह। पर वह ऐसा फकीर, भिखारी नहीं था। अन्दर से वह शहंशाह था।

विश्व विजय का सपना देखने वाला सिकन्दर भी शहंशाह था। दोनों की मुलाकात हुई थी। यह इतिहास बताता है। सिकन्दर को उसके गुरु ने कहा था कि भारत से यदि ला सको तो मेरे लिये एक गुरु लेकर आना। सिकन्दर हँसा था इस बात पर। फिरभी वह उस साधु के पास पहुँचा था। उसने देखा कि ऊपर से दरिद्र दीखने वाले उस साधु के मुँह पर तो एक अलौकिक आनन्द झलक रहा है! रेती के ढेर पर बैठा है, बदन पर कपड़े नहीं, सिर पर ताज नहीं और ऐसे आनन्द का सम्राट लग रहा है जिस आनन्द के साथ तो मेरा परिचय भी कभी नहीं आया! उस महापुरुष को भीतर का आनन्द था, जबकि सिकन्दर अपने भीतर में आनन्द न होने के कारण बाह्य चीजें जुटाकर सुख प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा था। एक तरफ भौतिकता, धन-वैभव, सत्ता, बाह्य साम्राज्य का ताज-धारी बादशाह था तो दूसरी ओर ऊपरी (तुच्छ) वैभव से हीन अखंड आनन्द का बेताज बादशाह था।

सिकन्दर उसको कहता है– "मैं आपको देखकर बहुत प्रभावित हुआ हूँ। आप मेरे साथ चलिये। मै बादशाह हूँ युनान का। मैं आपकी गरीबी को मिटा दूँगा।"

पर वह साधु हँस कर टाल देता है। सिकन्दर उसको और प्रलोभन देता है- "तुम्हारे रहने के लिये अच्छा महल दूंगा। घूमने के लिये घोड़ागाड़ी होगी। सैर करने के लिये बाग बगीचे होंगे,

बिछाने के लिये मखमलो गद्दे होंगे । आपको देखकर मेरे मन को बड़ो शान्ति मिल रहा है । अतः मेरे साथ चलो; तुम्हारा मेरा दोनों का भला होगा ।"

वह साधु सोचने लगा, 'धन वैभव का करे गुमान, सो मूरख, मंद, अंध, अज्ञान' और सिकन्दर से बोला, "तू क्या भला करेगा मेरा ? तेरे पास है क्या ? अपने साथ न तो तुम कुछ लाए थे, न ले जाओगे । मैं तो अपना आत्मा का आनन्द ले रहा हूँ और दुनियाँ को भी दे रहा हूँ ।" यह सुनकर सिकन्दर आग बबूला हो गया । आज तक इस प्रकार का अपमान उसका किसी ने नहीं किया था। उसने तलवार निकाल ली और बोला- "यदि मेरा कहा नहीं माना तो इस तलवार से तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर दूँगा ।"

यह देखकर साधु ने कहा-"सिकन्दर ! आज जैसा तू झूठ बोला है, वैसा कभी नहीं बोला । यह तलवार मेरी शक्ति के बिना हिल नहीं सकती । ऐसी कौनसी शक्ति है जो मुझे मार सके ? ऐसी कौनसी आग है जो मुझे जला सके ? ऐसा कौनसा पानी है जो मुझे डुबो सके ? ऐसी कौनसी हवा है जो मुझे उड़ा सके ? मैं यह शरीर नहीं हूँ । मैं आत्मा हूँ मैंने अपने आपको जान लिया है । मैं अपने आनन्द में मस्त हूँ ।

सिकन्दर का क्रोध हवा होने लगा, क्योंकि उसका तलवार वाला हाथ हवा में उठा ही रह गया था । वह हिल नहीं सकता था । यह उसके लिये चमत्कार था । वह तुरन्त महापुरुष के पैरों

में गिर पड़ा । महापुरुष ने कहा— "तुम मेरे शरीर को काट भी देते, परन्तु मै तुम्हारे ऊपर हत्या का पाप नहीं चढ़ने देना चाहता ।"

दुःख की चोटें जो सहन करता है वह ईश्वर को अपने हृदय में रखने की ताकत प्राप्त कर लेता है । उस साधु ने दुःख की चोटें सहन करके उस परमेश्वर को अपने हृदय में रख लिया था । वह तत्त्वज्ञानी था । ऐसे ज्ञानी के आगे इन्द्र का वैभव भी तुच्छ है ।

दुनियाँ में कौन सुखी है ? जिसको एक समय भोजन मिलता है वह दोनों समय भोजन चाहता है । जिसको दोनों समय भोजन मिलता है वह मकान चाहता है । जिसके पास मकान है, वह बङ्गला चाहता है । कार वाला कारखाना चाहता है । ये भोग मनुष्य को अपने पोछे भगाते रहते हैं । इनके पोछे मत भागो ! इनको ठुकराओ और आत्म साक्षात्कार की तरफ बढ़ो । ईश्वर के रास्ते चलने वालों के भोग आगे पीछे सेवक की तरह फिरते हैं । फिर आप भी कहेंगे—

'भागती फिरती थी दुनियाँ जबकि तलब करते थे हम,
अबकी ठुकरा दी तो वह बेकरार आने को है !'

अतः दुखों से नहीं घबराना चाहिये । उसकी चोटों को समझदारी से सहना चाहिये । उनके (दुखोंके) आने में राज होता है । उस राज को ध्यान में रखकर भगवान के रास्ते आगे बढ़ना चाहिये ।

★

७–१–७६
बुधवार,

दोपहर के ११–३० बजे हैं। सत्संग भवन में स्वामीजी अपने आसन पर विराजमान हैं। एक आगरा से कथावाचक पंडितजी आए हुए हैं। अभी २ उन्होंने अपना प्रवचन पूरा किया है। प्रवचन में उन्होंने बताया है कि मनुष्य–जन्म दुर्लभ है अतः संतों की शरण में जाकर उनसे प्रेरणा लेकर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये। अब स्वामीजी ने अपनी मधुरवाणी में बोलना प्रारम्भ किया—

स्वामीजी–हम सब यह जानते हैं कि मनुष्य–जन्म दुर्लभ है। बार बार नहीं मिलता है। अतः पुण्य कर्म करने चाहिये, प्रभु भक्ति करनी चाहिए। फिर भी ऐसा नहीं होता है। क्यों नहीं होता है? यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कई बार जैसा हम बच्चे को करने के लिये कहते हैं वैसा बच्चा नहीं करता है। वह उससे कुछ उल्टा ही करने का प्रयास करता है। हमारा मन भी वैसा ही है। जैसा हम चाहते हैं वैसा वह नहीं करता।

एक चेला था। उसको गुरुजी ने एक मंत्र दिया और कहा कि इसका जाप करना, पर ध्यान रखना कि मन्त्र जाप

के समय बन्दर का ध्यान नहीं आना चाहिये। चेला जब ध्यान करने बैठा तो उसको गुरुजी का वाक्य याद आया कि बन्दर का ध्यान नहीं आना चाहिये। उन्होंने ध्यान नहीं आने देने का कहा था पर ज्योंही वह जप करता कि बन्दर ही उसके ध्यान में आने लगा। वह जितना ही बन्दर को ध्यान से हटाने का प्रयत्न करता उतना ही ध्यान करते समय तेजी से बन्दर ही उसके ध्यान में आ खड़ा होता। जो नहीं करने का कहा था वही हो रहा था। कुछ दिन ऐसा ही सिलसिला चला। आखिर तंग आकर शिष्य ने माला लाकर गुरुजी को सौंप दी।

यही हमारा सब का हाल है। समझते सब हैं हम कि अपना ध्यान भगवान में लगाना चाहिये। मगर ध्यान में विषय ही विषय आते हैं। व्यवहार ही आता है करने में। ईश्वर के बिना सब साँसारिक व्यवहार मिथ्या है, यह हम सब जानते हैं, समझते हैं। फिर भी ऐसा क्यों होता है? क्यों कि मन का स्वभाव है आनन्द की ओर दौड़ने का। वह आनन्द चाहता है। आनन्द उसे नहीं मिलता इसलिये वह तुच्छ भोगों में ही आनन्द ढूँढने का प्रयास करता है। भोगों में उसे क्षणिक सुख मिलता है, क्षणिक हर्ष मिलता है, पर आनन्द नहीं मिलता। यदि उसे हरि रस या आत्मरस का स्वाद दिला दें तो उसे कोई रस नहीं लुभा सकता। वह नहीं मिलने से वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के रसों में ही घूमता रहता है।

यदि अच्छे कामों में मन नहीं लगाएंगे तो वह बुरे कामों में ही लिप्त हो जायगा। उसको बुरेकामों में लिप्त होने से रोकना चाहिये। मन को साधना में लगाकर नियंत्रित किया जा सकता है। योग साधना में ऐसी विधियाँ हैं कि जिनमें मन को शब्द, स्पर्श, रूप आदि के सुख भीतर ही मिल जाते हैं। फिर वह बाह्य सुखों की ओर नहीं दौड़ता।

मन आनन्द ढूँढता है पर वह शीघ्र नहीं मिलता। बहिर्मुखी इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे बाह्य चीजों में सुख का आभास जल्दी करा देती हैं। विषयों का हर्ष जल्दी मिल जाता है। जैसे पानी नीचे की ओर जल्दी बह जाता है। पर यदि ऊपर की ओर पहुँचाना हो तो हेन्डपम्प आदि लगाना पड़ता है। नीचे पतन है। ऊपर उत्थान है, पर उत्थान की ओर जाने के लिये प्रयास की अवश्यकता रहती है। पत्थर की चट्टान पर चढ़ो तो काफी दूर तक दीखता है। पर प्रयास करके यदि हृदय में स्थित हो जाएँ तो समस्त ब्राह्माण्ड देख सकते हैं।

साधना द्वारा मनको अन्तर्मुख करके बाह्य विषयों के प्रति आसक्ति छुड़ाई जा सकती है। यदि मन को रूप (दृश्य) देखने में सुख मिलता है तो 'आज्ञाचक्र' में ध्यान करो। ऐसे ऐसे दृश्य दिखेंगे कि बाहर के सब दृश्य उनके सम्मुख तुच्छ नजर आयेंगे। अपने यहाँ एक साधक ध्यान में बैठकर अपने सूक्ष्मशरीर द्वारा

पाताल लोक आदि में घूम कर आ जाता है। उसको अब ये सब दृश्य फीके नजर आते हैं। पहले उसको कहते थे, 'दुकान छोड़कर आओ, ध्यान करो' तो नहीं मानता था। अब उसको कहते हैं कि जाओ, दुकान सम्हालो तो अब दुकान पर नहीं जाता।

एक साधक ने यहाँ आने से पूर्व बताया कि आप ध्यान में मुझे दीखते हैं, फिर अदृश्य हो जाते है, उसके बाद आनन्द ही आनन्द आता है। यह भी ठीक है। भगवान की कृपा है। मन एकाग्र होता है। इतना समय वह संसार से विमुख तो रहता है! पर इससे भी आगे बढ़ना चाहिये। वह आनन्द किसको आता है? उसको देखना है। मैं स्वयं वह द्रष्टा हूँ, मैं आत्मा हूँ, ऐसा अपने को दृढ़ करना होगा।

एक बार भगवान बुद्ध ध्यानस्थ बैठे थे। पहाड़ी पर से एक चट्टान सरकी और नीचे की तरफ लुढकी। भगवान बुद्ध के सिर पर गिरने से पूर्व ही बीच में दूसरी चट्टान से टकराकर उसके दो टुकड़े हो गए। दोनों टुकड़े बुद्ध के दोनों तरफ आकर गिरे और बुद्ध बच गए, लेकिन उनमें से एक छोटी सी कंकरी टूटकर बुद्ध के पैर में आकर लगी और गरम गरम खून बहने लगा। बुद्ध का ध्यान टूटा तो वे शिष्यों से बोले, 'हे भिक्षुकों! देखो, मैं ध्यानस्थ था इसलिये मेरे पर यह चट्टान नहीं गिरी। पर ध्यान में थोड़ी त्रुटि रह गई थी इसलिए यह छोटी सी कंकरी आकर लगी। नहीं तो यह भी नहीं लगती।

जब हम ईश्वर से विमुख होकर संसार व्यवहार ठीक करने जाते हैं, तो वह तो मिलता नहीं और ईश्वर से भी वंचित रह जाते हैं। 'दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।' अतः मन को साँसारिक विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करना चाहिये।

यदि मन को रस चाहिये तो जीभ को तालु में लगाकर ध्यान करें, अनुपम रस का स्वाद आएगा।

यदि शब्द सुनने की इच्छा हो तो लय योग करे। अनहद स्वर सुनाई देगा। पर वह केवल एकाग्रता होगी। यहाँ भी वेदान्त का सत्संग मिल जाय तो वही एकाग्रता आत्मसाक्षात्कार में उपयोगी बन जाएगी।

यदि सुगंध की इच्छा है तो नासिका में ध्यान करे।

अर्थ यह है कि यदि हमने इन्द्रियों के द्वारा दीखनेवाला सुख ढूंढा, तो हम धोखे में ही रहेंगे, क्योंकि वह नाशवान ही होगा। हमें यदि देह का सद् उपयोग करना है तो संतों की शरण में जाएं। संतों में यदि श्रद्धा रखी तो वे उसका ध्यान विषयों से हटाकर भगवान की तरफ मोड़ेंगे और ऐसी वस्तु देंगे जो अखूट होगी।

अभी पंडितजी का प्रवचन हो रहा था तो मैं अपने ध्यान में इतना आनन्द में था कि आँखें खोलने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। पर इन्होंने प्रवचन जल्दी पूरा कर दिया, अतः बोलना

पड़ा। आज सुबह भी आप लोगों ने देखा था, एक शिकारपुर के साधु आये थे। मैं उस समय ध्यान में था। उनको मुलाकात के लिये घंटा भर बैठना पड़ा। जो उस आत्मा के आनन्द में मग्न हो जाता है उसे फिर बाह्य विषयों का सुख आकर्षित नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति भगवान का ध्यान करता है, वह फिर परिवार व समाज को भी अच्छा लगने लगता है। संतों को भी अच्छा लगता है तो फिर भगवान को तो अच्छा लगेगा ही।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये चारों अलग २ नहीं है। मन के कर्मों की विभिन्नता के कारण ये चार बन जाते हैं।

हमारी बुद्धि व्यक्त में रम गई है अतः अव्यक्तकी ओर नहीं जाती। जिसको हम सुख देखते हैं, वह तो सुख की पोशाक है। अन्दर दुःख ही दुःख भरा पड़ा है। मनुष्य अच्छे में अच्छा सुख काम विकार में मानता है, पर वह भी ५–१० मिनट से अधिक नहीं रहता। पर आत्मा का सुख मिल जाय तो? वह कभी खत्म नहीं होता। आत्म सुख का नशा ही और होता है। 'नाम नशे में नानका बूडो रहे दिन रात।'

'योगवशिष्ठ' में राजा शिखरध्वज और रानी चुडाला का प्रसंग आता है। चुडाला अपने पति को आत्मज्ञान कराती है। फिर उसके ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये योगबल से इन्द्र व उसके वैभव का सृजन करती है। इन्द्र अपने समस्त वैभव के साथ आता

है और शिखरध्वज से कहता है, "हे राजन! तुम स्वर्ग को चलो और दिव्य भोगों को भोगो। ऐरावत हाथी पर अथवा उच्चैः श्रवा घोड़ा, जो क्षीर समुद्र के मन्थन से निकला है, उस पर सवार होकर स्वर्ग में विचरो। अणिमा, महिमा, गरिमा आदि आठ सिद्धियाँ भी विद्यमान हैं। जो अच्छा हो सो लो और स्वग को चलो। वहाँ नन्दनवन हैं। एक से एक बढ़कर अप्सराएँ हैं। वहाँ चल-कर ऐसे ऐश्वर्य का भोग करो।"

तो राजा शिखिरध्वज जवाब देता है, 'हे देवराज! जाना वहाँ होता है जहाँ आगे न गया हो। और जहाँ आगे ही गए हों, वहाँ कैसे जावें? हमको तीनों लोक स्वर्ग ही दीखते हैं, और सदा स्वर्गरूप जो आत्मा है हम उसी में स्थित हैं। हमको सर्वत्र स्वर्ग हैं। हम सदा तृप्त और आनन्द स्वरूप हैं।" इस प्रकार स्वर्ग के ऐश्वर्य को भी राजा ठुकरा देता है। वह भी अपने आत्मा के आनन्द के आगे तुच्छ है।

हमें भी एक बार एक व्यक्ति ने यहाँ आकर कहा—'महाराज! थलतेज [शहर से थोड़ा दूर] में बहुत अच्छा सिनेमा घर (Open air theatre) बना है। आप वहाँ हमारे साथ कार में बैठकर सिनेमा देखने चलिये। वहाँ बहुत बड़ा स्टेज है। कार में ही बैठे बैठे सब देखना होता है। बहुत सुन्दर जगह है। एक बार आपके पावन चरणों द्वारा वह स्थान पवित्र होना चाहिये। आप अवश्य चलिये। आपको बड़ा आनन्द आएगा।" ऐसे

दो तीन बार वह कार लेकर आया और मुझे बहुत आग्रह किया। शायद वह समझता है कि स्वामीजी इन सुखों का अनुभव क्या जाने? जङ्गल में पड़े हैं। उसके सुख की पारिभाषिक दौड ऐन्द्रिक सुखों तक ही है। वह उन्हीं को सुख मानता है जो सुखका केवल आभास है। अपने अन्दर उस चेतन तत्व को जिसके कारण बाह्य सुख का भी आभास होता है, सदैव जो आनन्द स्वरूप है व जिसके आगे स्वर्ग के सुख भी तुच्छ हैं, उसको वह नहीं जानता। इसलिये मैंने उससे इतना ही कहा— "जिससे तुमको सब कुछ दीखता है उसी को पहले देख ले (यानि आत्म साक्षात्कार कर ले) फिर मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।"

मन यदि छोटी २ बातों में, वैषयिक सुख में उलझ गया तो उस महान् तत्व को कैसे पहचानेंगे? और उसको नहीं पह-चानेंगे तो हमारा जीवन एक मकोड़े से भी बदतर है। वह महान् तत्व यदि जान लें तो हम वहाँ बिना विद्या के भी विद्वान हैं, बिना धन के भी धनी हैं, बिना सत्ता के भी सम्राट है, बिना बल के भी [आत्मिक बल से] बलवान हैं-सच्चे अर्थों में। नरेन्द्र को ऐसा ही बनाया था स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने।

नरेन्द्र की आर्थिक अवस्था जब विकट हो गई थी तो राम-कृष्ण ने उससे कहा—"जाओ मंदिर में और माँ की पूजा करके धन मांगो। वह तो देने को तैयार है। तुम्हीं उससे मांगते नहीं

हो ।" नरेन्द्र मन्दिर में जाता है, माँ की पूजा करता है और भावाविष्ट होकर माँ से मांग करता है–'माँ, मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, वैराग्य दो ।' मांगकर जब बाहर आया तो परमहंस ने पूछा, 'मांग आए ?' नरेन्द्र ने कहा मांग तो आया, पर जो मांगने गया था वह तो नहीं मांगा ।' परमहंस ने कहा, 'जाओ वापस जाओ ।' नरेन्द्र वापस जाकर माँ के सम्मुख खड़ा होता है । परन्तु इस बार भी वह धन नहीं मांग सका । उसने वही ज्ञान भक्ति और वैराग्य मांगा । बाहर आने पर जब परमहंस ने पूछा तो जवाब दिया, 'नहीं मैं तो कुछ और ही मांग आया । इस बार भी मैं तो भूल गया ।' परमहंस ने पुनः कहा, 'जाओ वापस जाओ ।' नरेन्द्र तीसरी बार वापस गया । बहुत सतर्क होकर गया, परन्तु वह माँ से इस बार भी धन नहीं मांग सका । ऐसी महिमामयी माँ से मैं धन जैसी तुच्छ वस्तु मांगू ? नहीं । उसके मुंह से वही शब्द पूर्ववत निकले–'माँ, मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो. वैराग्य दो ।' बाहर आकर परमहंस के चरणों में गिर पड़ा और बोला, 'मुझे क्षमा करो । मेरे से वह नहीं मांगा जाता ।'

परमहंस यह देखकर गदगद हो जाते हैं । कहते हैं–"अरे नरेन्द्र ! तुमने भूल नहीं की । तुमने वही मांगा है जो मांगना चाहिये ।" फिर वही नरेन्द्र-नरेन्द्र से स्वामी विवेकानन्द बन जाते हैं जिनको आज समस्त संसार जानता है ।

लोग कहते हैं, 'हम तो संसारी हैं । क्या हम भी सब कुछ छोड़कर बाबाजी बन जाएँ ?' अरे नहीं । बाबाजी बनने से भी काम नहीं चलता । सफेद कपड़े छोड़कर भगवे वस्त्र धारण करने से, घर छोड़कर जङ्गल में जाने से भी यदि भीतरी रस नहीं आया और मन संसार में उलझा रहा, साँसारिक विषयों का चिन्तन करता रहा तो बाबाजी बनकर भी भटकते ही रहेंगे । फिर तो वही हाल हो जायगा कि 'लेने गई थी पूत और खो आई खसम ।' या 'गए थे हरिभजन को और ओटन लगे कपास ।' बाबाजी बनने की आवश्यकता नहीं है । मन को समझाने की आवश्यकता है । मन बन्दर की तरह चञ्चल है । वह अपनी चञ्चलता नहीं त्यागता और इस कारण से दुखी रहता है । वह अपने से नहीं मानता । अपने बस में नहीं होता । इसलिये पंडितजी ने ठीक कहा है कि मनुष्य–जन्म दुर्लभ है, बार बार नहीं मिलता है । इसको सफल बनाना है तो तत्वज्ञानी संतों की शरण में जाओ ।

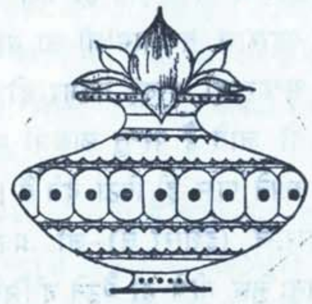

नर्मदा किनारे, कोरल (बड़ौदा)

लालजी महाराज का आश्रम

२३-२-७६, सोमवार.

शाम के ५ बजे हैं। स्वामीजी और कोरल के लालजी महाराज एक दूसरे के हाथ पकड़कर एक बड़े लकड़ी के पाट पर जिस पर आसन बिछा हुआ है एक दूसरे को बिठाने का आग्रहपूर्वक प्रयास कर रहे हैं। आखिर लालजी महाराज की जीत होती है और वे स्वामीजी को आसन पर बिठाने में सफल हो ही जाते हैं। लालजी महराज दिन को मौन व्रत रखते हैं अतः वे अपने इशारों से यही बता रहे हैं कि स्वामीजी तो कभी कभी इधर आते हैं। हम तो इधर ही रहते हैं। इसलिये यहाँ के भक्तों को सत्संग सुनाने का उत्तर दायित्व स्वामीजी पर ही आता है।

भक्त गण स्वामीजी के सामने ही फर्श पर बैठे हैं। लेखक का हृदय लालजी महाराज व स्वामीजी का यह आपस में प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर अन्दर ही अन्दर गदगद हो रहा है। स्वामीजी भी तख्त पर बैठ तो जाते हैं परन्तु लालजी महाराज को छोड़ते नहीं और उनको अपने पास ही बिठा देते हैं।

लालजी महाराज (इशारों से)–जो प्रवचन करता है वही ऊपर बैठता है, अतः मुझे नीचे ही बैठने दीजिये।

कृष्णा बेन जो अभी तक चुप बैठी थी अब बोल पड़ती है। (कृष्णा बेन भक्ति मार्ग में बहुत ऊँची भूमिका पर पहुँची हुई, बहुत ही प्रेम पूर्ण व्यवहार करने वाली साधिका हैं)

कृष्णा बेन–आशारामजी जब भी आते हैं, बापूजी (लालजी महाराज) को हिला देते हैं। अच्छा हुआ आप दोनों का झगड़ा समाप्त हो गया, नहीं तो कभी-कभी तो सारा सत्संग का समय यों ही निकल जाता है। (स्वामीजी की ओर देखकर उलाहना देते हुए) अब जल्दी से कुछ भगवद् भक्ति की बात सुनाइये न ! अबकी बार तो आए भी बहुत दिनों से हैं।

स्वामीजी–हाँ हाँ, मुझे ही बोलना पड़ेगा न ! ये तो (लाल जी महाराज की ओर मुस्कुरा कर देखते हुए) देखो, गूंगे बनकर बैठ जाते हैं।

भक्त लोग भी हँस पड़ते हैं। लालजी महाराज मौन बने हुए स्वामीजी की तरफ देखते रहते हैं। वातावरण बड़ा ही प्रेम-मय बन गया है। स्वामीजी थोड़ी देर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं। फिर धीरे धीरे आँखें खोलकर अपनी मधुरवाणी में बोलना प्रारम्भ करते हैं—

स्वामीजी–ईश्वर की सृष्टि में कहीं सुख–दुःख नहीं है। कहीं भी पाप-पुण्य भी नहीं है। कहीं भी भला-बुरा भी नहीं है। सब जीव कल्पित है। हम ही प्रकृति की चीजों में–अपने व्यवहार में

सुख-दुख, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ की कल्पना कर लेते हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता के पाँचवें अध्याय में साफ कहते हैं—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभकर्म को भी ग्रहण करता है, किन्तु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इससे सब जीव मोहित हो रहे हैं।

कोई अपने खेत में एरण्ड बो देवें और पास वाले खेत में गेहूँ लहलहाते देखकर कहे-'महाराज! देखो, मैंने भी खेत में कितनी मेहनत की है फिर भी मेरे खेत में तो एरन्ड ही एरन्ड उगे हैं, जबकि उसके खेत में तो गेहूँ लहलहा रहे हैं, तो उसे कौन समझाएँ कि तेरे मूल में ही भूल है। बोये ही एरन्ड़ हैं और गेहूँ की आस करता है। बोते समय ही क्यों नहीं ध्यान रखा? उस समय तुम भी गेहूँ ही बोते।

बस, उस एरन्ड़ बोने वाले की तरह ही हम सब हैं। किसी का बङ्गला देखकर, किसी की कार देखकर, किसी के ऐशो आराम को देखकर हम भगवान को कोसते हैं कि भगवान देखो कितना पक्षपात करते हैं? उसको तो कार दी है, उसके पास बंगला है और मेरे पास रहने के लिए साधारण मकान ही है। इस प्रकार हम अपने अभावों का रोना रोते हैं और दूसरों से द्वेष करते हैं, ईर्ष्या करते हैं और सुखो दुखी होते हैं। जिसके पास कार है,

जिसके पास बङ्गला है, ये सुविधाएँ उस के पूर्वजन्म के कर्मों के फल हैं, परन्तु हम भगवान को दोष देते हैं। वस्तुतः दोष अपनी दृष्टि का है।

हमारे अन्दर जन्म जन्मान्तरों से कुछ संस्कार घर कर लेते हैं। कुछ समाज के वातावरण से निरन्तर प्रभावित होकर हम कुछ मान्यताएं बना लेते हैं। इन संस्कारों एवं मान्यताओं के शीशे से ही हम हर वस्तु को देखते हैं।

सामने बैठे एक भक्त से स्वामीजी पूछते हैं—

स्वामीजी—तुम्हारा क्या नाम है?

वह—[हाथ जोड़कर] हरेश भाई।

स्वामीजी—अब देखो ये हरेश भाई हैं। इनका कोई शत्रु इनको रास्ते में मिल जाए तो उसको बड़ा बुरा लगेगा। वह मुंह फिरा लेगा इनकी तरफ से और सोचेगा-आज का दिन बड़ा खराब गया। पर यदि इनको कोई प्रिय मित्र मिल जाय रास्ते में तो मित्रका मुख कमल खिल जायगा। हरेश भाई तो वही हैं, परन्तु कोई तो इनको देखकर खुश होता है और कोई मुंह बिगाड़ता है।

वस्तु वही होती है परन्तु देखने वाले की जैसी दृष्टि होती है, जैसा भाव होता है वैसी ही उसे वह दृष्टिगोचर होने लगती है। यानि जैसी उसकी दृष्टि वैसी ही सृष्टि बन जाती है उसके

लिये। [अपनी दाढी पर हाथ फिराते हुए] अब मैं कहीं से गुजर रहा हूँ तो कोई देखकर कहेगा—'देखो, यह दाढ़ीवाला बाबा मुफ्त का खाता है, कुछ करता नहीं। यह देश पर भार है।' परन्तु कोई संस्कारी होगा, भगवद्-भक्त होगा तो कहेगा—'अहा! आज कैसा सौभाग्यशाली दिन है मेरा कि मुझे संत के दर्शन हुए।' वह श्रद्धा से झुककर प्रणाम करेगा और अपने घर अतिथ्य स्वीकार करने के लिये बड़ा आग्रह करेगा। एक तो मुझे देखकर नाक-भौंह सिकोड़ता है और दूसरा मुझे देखकर अपने को धन्य भाग मानता है। जैसी उनकी अपनी अपनी मान्यता थी, संस्कार थे, दृष्टि थी, वैसा ही मैं उनको नजर आया। ठीक है न?

स्वामीजी एक बार लालजी महाराज की ओर देखते हैं, फिर सब भक्तों की ओर देखकर कहते हैं—

स्वामीजी—एकबार लालजी महाराज ध्यान में कृष्णमय बन गये थे। इनको ऐसा लगा ध्यान में कि वे कृष्ण हैं और उनकी तरह वंशी हाथ में लेकर गायें चराने जा रहे हैं। ऐसा इसलिये हुआ कि इनकी कृष्णाकार वृत्ति हो गई। इनके मन में बार बार ऐसा संकल्प श्रीकृष्ण के बारे में उठता रहा और एक दिन इनकी वृत्ति कृष्णाकार बनने से इनको ऐसा ही नजर आया। जैसी इनकी दृष्टि थी वैसी सृष्टि बन गई।

अतः संसार कैसा है? यह जानना हो तो देखने वाला कैसा है? यह पहले जानना होगा। जैसा देखने वाला होगा

वैसा ही संसार उसे शुभ या अशुभ नजर आयगा। यह वेदान्त का बहुत गूढ एवं महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिसे कहते हैं दृष्टि-सृष्टि वाद। इसके दो भाग हैं—

एक है—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि और

दूसरा है—दृष्टि समकालीन सृष्टि या दृष्टि रेव सृष्टि।

जैसे आपको सपना आया कि आप राजा बन गए हैं। आपके पास हाथी घोड़े हैं, सेना है, बहुत सारे दास दासियाँ हर समय अदब के साथ आपकी सेवा करने को हाजिर हैं। आपके पास अथाह वैभव है। परन्तु ज्योंही आपका सपना टूटा आप अपने को अपने बिस्तर पर पाते हैं। बिस्तर पर ही आपकी दृष्टि ने हाथी घोड़ों व अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना, दास दासियाँ एवं अथाह वैभव की सृष्टि करली। इसको कहते हैं जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। लेकिन वह तब तक के लिये ही थी जब तक आप सपने में थे। बाद में वह सब लुप्त हो गई। इसको कहते हैं दृष्टि समकालीन सृष्टि।

तो इस प्रकार संसार में भला-बुरा, यश-अपयश, सुख-दुःख कुछ नहीं हैं। यह सब हमारी दृष्टि पर निर्भर है। अतः आवश्यकता संसार को बदलने की नहीं है। वे लोग दया के पात्र हैं जो यह सोचते हैं कि हमें संसार को ठीक करना है। वे सुधार के नाम पर बिगाड़ ही करेंगे। जरुरत संसार को बदलने की नहीं, अपनी दृष्टि ठीक करने की है। संसार में प्रतिकूलताएँ पग पग पर मिलेगी, परन्तु आपने यदि अपनी दृष्टि योग्य बनाली तो

वे ही आपके लिये अनुकूलताएँ बन जाएगी। फिर आपको उनके कारण दुःख नहीं होगा। सुख दुःख संसार में नहीं है, हमारे मन में है, हमारी दृष्टि में है। अपनी दृष्टि हम ठीक करलें तो जगत हमको दुःखद नहीं मंगलमय प्रतीत होगा। हम हर हाल में मस्त रहेंगे।

नर्मदा किनारे, कोरल (बडौदा)

लालजी महाराज का आश्रम,
ता. २४–२–७६, मंगलवार.

शाम के चार बजे हैं। लकड़ी के बड़े तख्त पर स्वामीजी विराजमान हैं। उनके समीप ही लालजी महाराज भी बैठे हैं। नीचे फर्श पर भक्तलोग स्वामीजी के श्री मुख से कुछ अमृत वचन सुनने के लिए जिज्ञासु भाव से बैठे हैं।

स्वामीजी–हम लोग संसार के विषयों में आनन्द ढूँढते हैं। परन्तु आनन्द बाहर नहीं है। आनन्द हमारे अन्दर ही है। हमारे अन्दर जो 'आत्म तत्त्व' है वही चेतन सत्ता आनन्द स्वरूप है। वह आत्म सत्ता सर्वसमय उपस्थित है। उसी के सहारे हम सब कुछ देख रहे हैं, सुन रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं। उसी सत्ता का सहारा लेकर हमारा मन हमको बाहरी पदार्थों में सुख की अनुभूति कराता है। हम देह भाव के कारण उसे तो भूल गए हैं जो सत्य है और इस संसार को जिसे मन दिखाता है, सत्य मान लेते हैं जो कि मिथ्या है।

हम जो कुछ जाग्रत अवस्था में देखते हैं यह व्यावहारिक सत्ता कहलाती है। जो हम सुप्तावस्था में स्वप्न देखते हैं उसे प्रातिभासिक सत्ता कहते हैं और इन्द्रियों से परे जो सत्ता है यानि जो इन्द्रिय गम्य नहीं है वह पारमार्थिक सत्ता कहलाती है।

हम स्वप्न में कई प्रकार की घटनाएँ देखते हैं। हम तो सो जाते हैं फिर यह सब कौन देखता है? उसी चेतन सत्ता से शक्ति लेकर हमारा मन स्वप्न का जगत निर्माण करता है। यानि उस समय भी वही चेतन सत्ता साक्षी भाव में उपस्थित रहती है। वह यदि न हो तो स्वप्न के जगत का आभास नहीं होगा।

इसी प्रकार जाग्रत जगत में उसी सत्ता के सहारे मन बाह्य वस्तुओं का आभास कराता है। यदि उस सत्ता की साक्षी नहीं हो तो हमारी आँखें भलेही खुली रहे हम नहीं देख सकते, कान भले ही खुले रहें और बहुत सी आवाजें हो रही हों, पर हम नहीं सुन सकते। हमें सुनाई नहीं देगा।

जब हम कल्पना करते हैं कि हम भी मर जाएँगे तो यह कल्पना कौन करता है? वही चेतन सत्ता न? वह कभी मरती नहीं। वह कभी जन्मती नहीं। वह अजन्मा और अमर्त्य है। वही सत्ता सर्वत्र व्याप्त है। उसे ही कोई आत्मा कहता है, कोई परमात्मा कहता है, कोई ब्रह्म कहता है, कोई सत्य कहता है। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' उसके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।'

वही परम तत्त्व हम हैं। उसी की सत्ता से सब कुछ हो रहा है। वह स्वयं आनन्द-स्वरूप है। उस अपने आनन्द-स्वरूप को हम भूले बैठे हैं और बाहर की चीजों में सुख जिन्हें इन्द्रियाँ बताती है ढूँढ रहे हैं। क्षणिक सुख का आभास भी उसी की सत्ता से होता है। प्रकृति स्वयं अपूर्ण है। वह भी उसी की सत्ता से शक्ति लेकर पुरुष को सुख का आभास कराती है। अपूर्ण प्रकृति आखिर कब तक उससे शक्ति लेकर सुख का आभास कराएगी? आनन्द-स्वरूप तो जीव की वह आत्मसत्ता स्वयं हैं। अतः जीव को सुख के लिये अपनी आनन्द-स्वरूप आत्मसत्ता का ही सहारा लेना चाहिये। यदि वह प्रकृति में सुख ढूँढ़ेगा तो धोखा ही हाथ लगेगा।

हम सुख के निमित्त विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करते हैं। परन्तु देवी और देवता भी उसी परमात्म-तत्त्व की सत्ता से ही शक्ति लेकर हमको वरदान देते हैं और वह तत्त्व तो हम स्वयं है। दूसरों का सहारा हम क्यों लेते हैं? उस आत्म-तत्त्व का हम साक्षात्कार करें। यदि हम प्रकृति की चीजों में बहिर्मुखी बनकर सुख ढूँढेंगे तो हमारी स्थिति उस हिरण की तरह हो जाएगी जिसके नाभी में ही कस्तुरी होती है और वह उसकी सुगंध के लिये बाहर भाग दौड़ करता रहता है—

कस्तुरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढे बन माही,
ऐसे घट में राम है, जग जानत नाही।

ईश्वर सृष्टि में सुख दुःख नहीं है। जीव सृष्टि ही सुख दुःख निर्माण करती है। प्रकृति की घटनाओं में जैसा आपका भाव होगा, जैसी आप अपनी वृत्ति बनाऐंगे, जैसा आप संकल्प करेंगे वैसा ही आपको सुख—दुःख या शुभ—अशुभ महसूस होगा।

समझो, दो लड़के विदेश में कहीं कमाने जाते हैं। एक का कुछ दिन बाद मरण हो जाता है और दूसरा खूब पैसा कमाता है। अब कोई विदेश से उन लडकों के पिता को दो अलग-अलग पत्र लिखें कि आपका लड़का मर गया है और आपका लड़का खूब पैसे कमा रहा है। संयोग से यदि वे पत्र बदलकर दोनों पिताओं को मिले तो कल्पना करो क्या होगा? जिसका पुत्र मर गया है वह तो समझेगा कि मेरा पुत्र खूब कमा रहा है और बहुत प्रसन्न होगा। दरअसल में उसे दुखी होना चाहिये क्योंकि उसका तो पुत्र मर चुका है। दूसरी ओर जिसका पुत्र वास्तव में नहीं मरा है वह पिता पत्र बदलने के कारण अपने पुत्र को मरा जानकर रोने पीटने लग जायगा। उसे बहुत दुःख होगा जबकि उसे बहुत प्रसन्न होना चाहिये। यानि सुख अथवा दुःख पुत्रों के मरने या न मरने या कमाने से नहीं हुआ अपितु उन पिताओं के अपने भावों के कारण हुआ। जैसी उनको अपने पुत्रों की सूचना मिली उसके अनुसार हो गया सुख-दुख।

यानि सुख-दुःख मरने की घटना में निहीत नहीं है। अपने पुत्रों के प्रति पिताओं ने जो अपना कल्पित संसार बनाया है उसमें

जब वे चोट महसूस करते हैं तब उनको दुःख होता है। अतः मुक्त होकर संसार में रहना चाहिये। हम आत्मा हैं। हम साक्षी स्वरूप हैं। प्रकृति की घटनाओं से अपने अन्तर को मत चलित होने दो। व्यवहार करो पर निर्लेप होकर। जो कुछ दीख रहा है सब मिथ्या है। यह सब गुजर जायगा। पहले जो कुछ हुआ वह सपना बन गया। वर्तमान में जो रहा है वह भी सपना बन जायगा। भविष्य में जो होगा वह भी सपना बन जायगा। **सपने में कितने ही महल बनें, कितने ही हाथी घोड़े बनें, कितने ही नगर व बाजार बनें परन्तु जब सपना टूटा तो सब बेकार।** वैसे ही इस जगत को स्वप्नवत् जानो। फिर इसकी घटनाओं से अपने को हम सुखी दुःखी क्यों करें? तटस्थ रहकर हर्षशोक से ऊपर रहकर व्यवहार करते रहें।

होली (धूलेटी)

१६-३-७६

सोमवार

सत्संग भवन में स्वामीजी अपने आसन पर विराजमान हैं। भवन श्रोतागणों से खचाखच भरा है। सभी तल्लीन हो स्वामीजी के अमृत वचनों का पान कर रहे हैं—

स्वामीजी—

आज का दिन धूलेटी का है। कल होली थी। कल शाम को लकड़ियाँ इकट्ठी कर आप सबने होली जलाई होगी। होली में आटे की रोटी बना कर उस पर धागा लपेट कर उसे धागे सहित आग में सेका जाता है। रोटी सिक (पक) जाती है और धागा साबूत (सही सलामत) रह जाता है। आप में से कोई भी भाव सहित ऐसा प्रयोग कर सकता है। परिणाम यही आएगा। कईयों ने कल किया ही होगा (सब श्रोताओं पर एक नजर घुमाकर) क्यों?

कुछ श्रोता—जी! हमने किया था ऐसा ही। रोटी सिक गई थी और धागा साबूत बचा था!

स्वामीजी– होली क्यों मनाते हैं?

स्वामीजी कुछ भक्तों से यह प्रश्न करते हैं। तीन चार भक्त एक एक कर खड़े होते हैं और होलिका के भाई प्रह्लाद को गोद में बिठाकर जलने की कथा का संक्षेप में वर्णन करते हैं जिसमें होलिका जल जाती है और प्रह्लाद बच जाता है।

स्वामीजो– बस, यही पौराणिक कथा सब जगह प्रचलित है। अपने अपने स्थान व परिस्थितियों के कारण कथा के कुछ अंश भले हो बदल गए हों, बाकी मूल में यही कथा है। पुराणों में ऐसी कई कथाएँ-वार्ताएँ हैं, उनको हम पढ़ते हैं परन्तु उनका सही लक्ष्यार्थ नहीं समझ पाते। किसी विशेष बात को समझने के लिये ऐसी कथाओं की रचना पुराणों में की हुई है। पुराणों की भाषा ऐसी कथाओं व वार्ताओं की भाषा है। यह इसलिये कि ऐसी रोचक वार्ताएँ पढ़ते पढ़ते यथार्थ तत्त्व समझ में आ जाय।

जैसे दूज (बीज) का चन्द्रमा जल्दी दीखने में नहीं आता तो उसको अटकल से दिखाते हैं। वह किसी को दिखाते सयय (स्वामीजी स्वयं हाव भाव दिखाते हुए) कहते हैं- वह देखो सामने पेड़ है न पीपल का, उसकी स........बसे ऊँची डाली है न, दीख रही है न ? उसके पास में–थो....ड़ा ऊपर की ओर देखो। वहाँ ध्यान से देखो, एक तारा छोटे बादल के नीचे टिमटिमा रहा है। है न ? बस उसके थोडा दाहिनी ओर वो पतला सा गोलाई लिये हुए चाँद है.... । दिखा ?' इस प्रकार दिखाने से जब उसको दिख जाता है तब वह चौंक उठता है और एकदम कहता है- 'हाँ, दीख गया।' एकदम उसको नहीं दिखा। उसकी नजर को बनाने के लिये, चाँद दिखाने के लिये पीपल का पेड़, उसकी डाली, बादल और तारे का सहारा लेना पड़ा। अब कोई इन्ही को देखता रहे और चन्द्रमा को भूल जाय तो ?

ठीक उसी प्रकार होलिका-प्रह्लाद की गाथाएँ, नृसिंह और वामन अवतार की गाथाएँ उसी निर्दोष सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा को जताने के लिये हैं।

मुनि शुकदेवजी राजा परीक्षित को उपदेश करते हुए कहते हैं, "हे राजन्! सावधान होकर सुनो। ये कथा-वार्ताएँ तुम्हारे चित्त को एकाग्र करने के निमित्त कह रहा हूँ।"

इसी प्रकार महर्षि वशिष्टजी भी कहते हैं, " हे रामजी ! मै जो यह शब्दों का जाल फेंक रहा हूँ वह तुम्हारे उस मन रूपी पक्षी को फँसाने के लिये फेंक रहा हूँ।"

पुराणों में कथा कहते हुए महर्षि कहते हैं, "हे राजन् ! ध्यान देकर सुनो। एक राजा था। उसने इतने वर्षों तक राज्य किया। फिर उसके ऊपर बड़ा भारी संकट आया। फिर उसे वैराग्य हुआ और वह आत्मसाक्षात्कार के लिये गुरु की खोज में निकल पड़ा। फिर उसे ज्ञान हुआ....आदि।"

यह सब कथाएँ केवल सुनने के लिये नहीं हैं। इनके सुनने का अर्थ है कि हम भी उस राजा की तरह वैराग्यवान व विवेकवान होकर आत्म ज्ञान पाएँ। कथा केवल सुनकर भूल जाने के लिए नहीं होती। कथा उसका लक्ष्यार्थ लेकर उसको जीवन में उतारने के लिए होती है। कथा में राजा को कैसी कैसी परिस्थितियों ने घेरा ? उसे क्या क्या संकट पड़े, उसमें से उसने कैसे रास्ता निकाला ? और अंत में उसने कैसे ज्ञान लाभ किया, उसको जानकर हम

भो अपने जीवन को ऐसो गलतियों से बचाकर आत्मोत्थान की तरफ ले जाएँ।

एक सज्जन को उसके बड़े अच्छे स्वभाव से प्रभावित होकर एक ने पूछा, " आपके जोवन में भी कई उतार चढ़ाव, हानि–लाभ, सुख–दुःख के प्रसंग आते ही होंगे, फिर भी हर समय आप प्रसन्न चित्त दिखते हैं। आपका स्वभाव इतना सरल और अच्छा कैसे है ? आपके मधुर स्वभाव का क्या रहस्य है ?" तो उस सज्जन ने जवाब दिया, " मैं हर परिस्थिति में भगवान श्री राम के आदर्श को सामने रख लेता हूँ। जब कोई कष्ट आता है तो उस समय सोचता हूँ कि ऐसे कष्ट के समयमें भगवानराम होने तो क्या करते ? भगवान श्रीरामचन्द्रजी के आदर्श को याद करके मार्ग पा लेता हूँ। जैसे भगवान राम का राज्याभिषेक होने वाला था परन्तु उनको वनगमन करना पड़ा। अत्यंत हर्ष का प्रसंग कुछ ही क्षणों में शोक का प्रसंग बन गया। ऐसे शोक के प्रसंग में श्री राम शोकातुर हुए थे क्या ? यदि वे ऐसे विकट कष्ट के प्रसंग में भी शोकातुर नहीं हुए तो सामान्य कष्ट में शोकातुर होने की मुझे क्या आवश्यकता है? इस प्रकार जब मुझे कष्ट आते हैं तो मैं भगवान श्री राम के आदर्श व्यवहार को याद करके सदैव प्रसन्न रहता हूँ।"

संसार में सुख दुःख होना, तनाव संघर्ष आना यह तो संसार का स्वभाव है। कोई चाहे कि ऐसा न हो तो यह संभव नहीं। अवतारी पुरुष के साथ भी यह होगा ही। वे चाहे राम हो चाहे

कृष्ण हो-जो भी हो, इस सरकते हुए चोले को धारण करेंगे उनको हर्ष और शोक के प्रसङ्गों में से पसार (निकलना) होना हो पड़ेगा। ईश्वर को छातो पर खेलने का सामर्थ्य रखने वाले महापुरुषों को भी लोगों ने निन्दा किये बिना नहीं छोड़ा तो हम आप की तो बात ही क्या है ? अतः बाह्य संघर्षों से घबराने की आवश्यकता नहीं है। उनमें विवेक करके शास्त्रों का लक्ष्यार्थ समझकर अपने अन्तर को प्रभावित (चलित) नहीं होने देना चाहिये।

भगवान से हिरण्यकशिपु को किसी भी अस्त्र शस्त्र से न मरने का वरदान मिला तो उसने अपने आप को ही पुजवाना शुरु कर दिया। अपने ही बेटे प्रह्लाद के विरोधी होने से उसने उसे मरवाना चाहा। प्रह्लाद की बहन होलिका उसे गोद में लेकर अग्नि में बैठ गई-उसे जला कर भस्म करने के लिये, फिर भी प्रह्लाद बच गया और होलिका जल गई। जो इसके मर्म को तरफ ध्यान नहीं देते और कथा ही सुनना चाहते हैं उनके लिये कथा यहीं समाप्त हो जाती है। वे उसमें का दृष्टि-बिन्दु नहीं देख सकते। किन्तु इसका बहुत गूढ़ लक्ष्यार्थ है। वह यदि नहीं समझा तो सारो कथा केवल शुष्क कथा है। उसको समझे बिना हर वर्ष कितनी हो होलियाँ जला लो, सब बेकार हैं। जोवन को उससे कोई फायदा नहीं।

लक्ष्यार्थ इस प्रकार है—

राक्षसराज हिरण्यकशिपु ने भगवान से यह वरदान लेकर

कि वह न तो अस्त्र से मरे न शस्त्र से, न दिन को मरे न रात को, न बाहर मरे न अन्दर, न आग में जले न पानी में डूबे; अपनी देह को पुजवाना शुरू कर दिया। अब इतना बड़ा अमरत्व का वरदान पाए हुए व्यक्ति भी मर गए तो हम किस खेत की मूली हैं? हम क्यों अपने आप को न मरने वाला समझ कर क्रूर-कपट करके पाप कमा रहे हैं? राक्षसराज ने बहुत तपस्या की और उसके फलस्वरूप इतना बड़ा वरदान पाया! परन्तु विलासी हो गया, अपने आपको पुजवाने लगा, अपने अहंकार को पोषण देने लगा और इसलिये अस्त्र-शस्त्र, अग्नि-पानी से भी न मरने के वरदान के स्टोक (stock) होते हुए भी उसको मौत ने नया रूप धारण कर लिया-नरसिंह अवतार का और वह न दिन में न रात में तो संध्याकाल में, न अन्दर न बाहर तो दरवाजे के बीच में, न मनुष्य न पशु तो आधे नर और आधे पशु रूप में यानि नरसिंह द्वारा, न अस्त्र न शस्त्र तो नाखूनों से अंत में मारा गया। होली यह संदेश देती है कि अपने पूर्व किये गए पुण्यों के फलस्वरूप हमको जो भी सुख के साधन मिले हैं उनका उपयोग करने में विवेक नहीं रखा, हम विलासी बन गए तो हमारे पुण्य के स्टोक भी कुछ काम नहीं आएँगे! हमारा हाल भी हिरण्यकशिपु जैसा हो जायगा! अहंकार बड़ी खराब चीज है। हिरण्यकशिपु ने अहंकार में आकर सर्वत्र अपना हुकुम चलाना चाहा था, परन्तु उसको नष्ट होना पड़ा; वैसे

हमें भी ईश्वर की सृष्टि को समझ कर, अहंकार को पोषण न देकर, विवेक से चलना चाहिये और दूसरों को अपने हुकुम के नीचे दुराग्रहपूर्वक चलाकर कष्ट देने का पागलपन नहीं करना चाहिये। सबमें अपनी आत्मा का दर्शन करना चाहिए।

इसी प्रकार धागे वाली रोटी सेकने में भी बड़ा मर्म है। यह हमारा स्थूल शरीर रोटी है और यह संसार में पकने के लिये ही बनी है। प्रकृति रूपी माँ ने यह शरीर संसार रूपी भट्ठी में जलने के लिये ही बनाया है और साथ में छोटा सा धागा भी बाँध दिया है। यानि इस शरीर के साथ धागा रूपी आत्मदेव है। शरीर जल जाय तो भी आत्मदेवरूपी इस धागे पर कोई आँच नहीं आती। होली आत्मा की अमरता और देह की नश्वरता का संदेश देती है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

(गीता अध्याय–२)

भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि हे अर्जुन! न तो इस आत्मा को शस्त्र आदि काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गीला कर सकता है और न ही वायु सुखा सकती है।

अब धागा रोने लगे कि मैं रोटी हूँ—जल जाऊँगा तो यह उसका पागलपन है। रोटी तो जलने के लिये ही बनी है। नाहक

हम इतना दुःख मानते हैं। जिस शरीर को हम इतना पालते-पोसते हैं, संवारते हैं वह तो एक दिन जलने के लिये ही बना है। जो हाल रोटी का होता है वही इसका होगा यह निश्चित है, हम फिर उसका क्यों दुःख मानें ?

कर सत्संग अभी से प्यारे नहीं तो फिर पछताना है।
खिलापिला कर देह बढ़ाया वह भी अगन जलाना है।
पड़ा रहेगा माल खजाना छोड़ त्रियासुत जाना है।
कर सत्संग............॥

जीवन में हर्षशोक के बड़े अजीब प्रसङ्ग आते हैं। एक बार बहुत वर्ष पहले की बात है, कांकरिया (शहर का तालाब जिसके आस पास की मनोहर शोभा के कारण बहुत लोग वहाँ सुबह शाम भ्रमण के लिये आते हैं) के पास में किसी महिला के साथ किसी ने अभद्र व्यवहार किया तो उसके पति ने जोर से चिल्लाना शुरु किया—"अरे दौड़ो, मेरी पत्नी को बचाओ !" तभी एक व्यक्ति उसके पीछे दौड़ा और उसको पकड़ कर उसी के दो चाटे गाल पर जमा दिये। उसने कहा—"अरे, मुझे क्यों मारते हो ? उस मेरी पत्नी को लेजाने वाले को मारो।" तो वह बोला, "कम्बख्त, उसे तो छुडाऊँगा ही, परन्तु तुममें पत्नी की रक्षा करने का दम नहीं था, उसे संभालने की शक्ति नहीं थी तो उसे लाए ही क्यों ?"

तुम्हारे जीवन में भी रावण जैसा कोई दुष्ट आ जाय तो तुम क्या करोगे ? तुम भी राम का आदर्श सामने रखो ! रावण सीता

को हर के गया था। राम चाहते तो हजार सीता पैदा कर सकते थे, 'परन्तु एक नारी सदा ब्रह्मचारी।' सीता के लिये उन्होंने रावण की सोने की लंका जलवा कर राख करा दी थी। फिर अग्नि-परीक्षा करके सीता को ग्रहण किया था।

इसी प्रकार नारी के जीवन में ऐसा प्रसङ्ग आवे तो वह क्या करे ? तो वह वही करे जो सीता ने किया था। सीता हर घड़ी राम ही राम रटती रही थी। उस सती ने रावण की ओर भूलकर भी नहीं ताका। रावण के उसको लुभाने के सब प्रयत्न निष्फल हुए थे।

जब लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगती है और वे मूर्छित हो जाते हैं तब राम हा ! लक्ष्मण हा ! लक्ष्मण करके भाई के लिये रुदन करते हैं। त्रिलोकीनाथ, सर्वज्ञ, सर्व-समर्थ भगवान श्री राम भाई लक्ष्मण के लिये इस प्रकार आँसू बहाते हैं ? (ऐसा करते हैं यद्यपि अन्दर से सब कुछ समझते हैं परन्तु लोक व्यवहार, भाई का आदर्श स्थापित करने के लिये वे सब करते हैं) हमारे भाई के सम्बन्ध में ऐसी परिस्थिति आ जाय तो हम क्या करें ? बस....भगवान राम के जीवन का यह प्रसङ्ग स्मरण करें और समस्या का हल मिल जायगा। यदि हमारा यह लक्ष्यार्थ लेने का दृष्टिकोण बन जाय तो इस प्रकार के आजकल के भाई भाई के झगड़े समाप्त हो जाय और कुटुम्ब में स्वर्ग उतर आवें।

यदि देवर और भाभी के व्यवहार में मार्ग निर्देश की आवश्यकता हो तो लक्ष्मण का सीता के साथ व्यवहार स्मरण में लाओ। जब सीता के गहने पहचानने की बात आई तो लक्ष्मण कहते हैं, "माँ सीता के पैरों के गहने तो मैं पहचान सकता हूँ क्योंकि चरण-स्पर्श के समय उन पर मेरी दृष्टि रहती थी, बाकी ऊपर के गहनों का मुझे ख्याल नहीं है।" इस प्रकार जहाँ भी दुविधा का प्रसङ्ग खड़ा हो वहाँ तुरंत ऐसे प्रसङ्गों को याद करके लक्ष्यार्थ पर दृष्टि डालें तो मार्ग तुरंत मिल जाता है।

होली के दूसरे दिन धूलेटी आती है। उसमें सम्पूर्ण वातावरण रंगीन बन जाता है। बूढ़े-बच्चे, बाप-बेटे, पति-पत्नी, सेठ नौकर, गरीब-अमीर, भाई बहन कोई भी हो सभी एक दूसरे पर रंग ड़ालते हैं, गुलाल ड़ालते हैं। यह नैसर्गिक (प्राकृतिक) जीवन बिताने का संदेश देता है। तुम्हारी सब पद-प्रतिष्ठा, मान-अपमान, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े ये सब ऊपर के भेद हैं। अन्दर में वही परम तत्व सबके अन्दर विद्यमान है। ऊपरी भेद के कारण बंधन में अपने आप को मत समझो। सर्वत्र, सबजगह, सबमें मैं ही हूँ। यह एकता का संदेश धूलेटी देती है। मुक्त बनो! रोटी भले ही काली पीली, जली कच्ची हो परन्तु धागा अन्दर का साबूत है। आज धूलेटी के दिन कैसा भी किसी पर रंग ड़ालो, कोई क्रोध नहीं कर सकता। आज ऊपर की बनावटी पदवी को हटाओ! एक रंग में रंग जाओ! उसी एक मेव आत्मरूपी रंग में रंग जाओ!

अपने आत्मिक आनन्द का रंग एक बार लग जाय तो फिर वह नहीं छूटता, सदैव रहता है। धूलेटी का रंग तो फिर भी छूट जाता है। परन्तु यह रंग उस आत्मिक अखंड रंग की ओर इशारा करने के लिए हर वर्ष आता है।

स्थूल दृष्टि में तो रंग की पिचकारी केवल एक दूसरे पर रंग ड़ालने की पिचकारी ही है परन्तु सूक्ष्मभाव यह है कि हमारे जीवन में मान—अपमान, निन्दा—स्तुति के आघात—प्रत्याघात खूब आएँगे; शरीर तुम्हारा है तो ऐसा होगा ही परन्तु तुम इससे चञ्चल मत बनो। तुम तो अपने आत्म स्वरूप को पहचानो और आघातों की परवाह मत करो। शरीर पर कितनी ही रंग की, मान—अपमान की पिचकारियाँ लगे परन्तु मैं हर हाल में मस्त रहूँगा—

मम दिल मस्त सदा तुम रहना, आन पड़े सो सहना।
आत्म नशे में देह भुलाकर, साक्षी होकर रहना॥

आज सुबह आश्रम में आप सबने कार्य किये हैं। कोई भूत पूर्व M.L.A (नाथाभाई) है, कोई M.A है, कोई B.A है, कोई वकील है, कोई प्रोफेसर है, कोई व्यापारी है, कोई मौल्या सेठ है। (स्वामीजी उन सबकी तरफ देखते भी जा रहे हैं) परन्तु किसी को भी आज कार्य करते समय अपनी पदवी का भान नहीं था। सभी तगारे उठा रहे थे। सभी मिट्टी खोद रहे थे। आज सब एक रंग में रंगे हुए हैं।

स्वामीजी भाव विभोर होकर गाने लगते हैं—

उसी रंग में रहना रे बन्दे, उसी रंग में रहना ।
जिस रंग में परमेश्वर राखे उसी रंग में रहना ॥

स्वामीजी को मधुर स्वर से गाते देखकर सब झूम उठते हैं। जिसके हाथ में ढ़ोलक थी वह मस्त होकर ढोलक बजाने में तन्मय हो गया। अन्य भक्त हाथ से ही ताली बजाकर गा रहे हैं। दो-तीन भक्त खड़े होकर नाचते हुए, झूमते हुए गा रहे हैं। सारे वातावरण में एक अजीब मस्ती छा रही है। भजन गाना थोड़ी देर बाद बन्द हो जाता है, परन्तु ताली और ढोलक बजती ही जा रही है। नाचने वाले नाचे ही जा रहे हैं। स्वामीजी धीरे धीरे अपनी आँखे खोल देते हैं और यह उमंग भरा दृश्य देखते ही रहते हैं। धीरे धीरे ढोलक और ताली बजना बन्द हो जाता है और पुनः स्वामीजी अपनी मधुर वाणी में बोलना प्रारम्भ करते हैं—

स्वामीजी—अस्ति, भाति, प्रिय परमात्मा का स्वरूप है, उसमें नाम व रूप प्रकृति के मिलकर यह सब कुछ बन गया है इसको विचारें। (गुलाब का फूल हाथ में लेकर) यह गुलाब का फूल है। कुछ दिन पहले यह बीज था, खातर (खाद) था, मिट्टी था; अब पलट कर यह गुलाब बन गया। मिट्टी व खातर मिट गई परन्तु उसकी हस्ती गुलाब में आ गई।

बीज है, उसको बोने पर उसका अंकुर फूटा तो बीज मिट गया। जब पौधा बना तो अंकुर व बीज भी गुम हो गए, अस्ति भाति और प्रियता उसमें रह गई, नाम और रूप पलटता गया।

इसी प्रकार लकड़ी है। उसको जला दो। जलकर वह कोयला बन जायगी परन्तु नष्ट नहीं होगी क्योंकि उसमें ब्रह्मत्व है, परमात्म तत्त्व है अतः अमर है। नाम और रूप प्रकृति का है। वह तो बदलेगा ही।

बच्चे का जन्म हुआ, वह बड़ा हुआ। अभी वह किसी का लड़का है, फिर किसी का साला बना, किसी का बहनोई, किसी का मामा बना और फिर बूढ़ा होकर मर गया। बच्चा पैदा हुआ था, बहुत कुछ बना था, परन्तु अंत में मर गया। शरीर पंचभूतों का था वह पंचभूतों में मिल गया। एक सा कोई भी नहीं रह सकता, न किसी को रख सकता है वह परिवर्तित होता रहेगा ही, भले ही देर लगे। 'जो जाही ते उपजा, लीन ताही में जान।' नाम और रूप प्रकृति का है अतः वह बदलेगा ही। उसमें यदि मोह रखा तो बाद में रोना ही पड़ेगा।

महापुरुष इस बात को जानते हैं, अतः दुःखी नहीं होते, परन्तु व्यवहार में बताने के लिये दुःखी होकर बता देते हैं कि व्यवहार करना हो तो ऐसा करना परन्तु अन्दर से निर्लेप रहना। भगवान राम ने जब लक्ष्मण को शक्ति लगी थी तब ऐसा ही व्यवहार करके दिखाया था। उन्होंने ऐसा मर्यादा स्थापन के लिये किया था। इसीलिये उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं।

अतः शास्त्र पढ़ते समय उनके लक्ष्यार्थ की तरफ ध्यान रखो! होली खेलते समय भी इसका लक्ष्यार्थ ध्यान में होगा तो होली खेलना सार्थक सिद्ध होगा।

एक साधक एक भरा हुआ बर्तन लाकर स्वामीजी के सम्मुख रखता है । स्वामीजी इसको हाथमें लेकर देखते हैं, फिर सबकी ओर मुस्कराते हुए देखकर कहते हैं–

स्वामीजी–देखो यह चन्दन एवं अन्य कुछ बहुमुल्य वस्तुओं से मिलाकर होली खेलने के लिये बनाया हुआ अमृत रस है । बोलो तो तुम्हारे ऊपर यह रंग डालूँ और बोलो तो नहीं डालूँ ।

सभी की हार्दिक इच्छा हो रही है कि स्वामीजी हम पर रंग डाले । अतः सभी 'हाँ स्वामीजी डालिये' कहकर उत्सुक होकर उनके हाथ में पकड़े बर्तन की तरफ देखने लगे । स्वामीजी ने उस बर्तन में हाथ डाला और कुछ उस अमृत रस के छींटे भक्तों पर उछाले । उस अमृत रस के छींटे हवा में उड़ते ही एक मनमोहक सुगंध सारे भवन में व्याप्त हो गई ।

सबमें एक विशेष प्रकार की मस्ती छाने लगी । ढोलक पुनः बजना शुरु हो गया । और साथ ही स्वामीजी के साथ स्वर से स्वर मिलाकर सबने गाना शुरु कर दिया—

उसी रंग में रहना रे बन्दे,
उसी रंग में रहना····

हरि ॐ

१५. २. ७६.

रविवार

सुबह के साढ़े आठ बजे हैं । स्वामीजी की कुटिया के बरामदे की चहारदीवारी के बाहर कुछ लोग बड़ी उत्सुकता से कान खड़े करके सुन रहे हैं । अन्दर स्वामीजी, शिवलाल काका और गुजरात के मंत्री हरिसिंहजी चावड़ा की साली इन्द्रा बेन हैं । इन्द्रा बेन को कोई विशेष प्रकार का प्रेत लगा हुआ है जो किसी भी टोने टोटके वालों से नहीं निकला है और १२ वर्ष से इन्द्रा बेन को परेशान किये हुए हैं । स्वामीजी ने इन्द्रा बेन को रविवार को आने के लिये कहा था अतः वह बडी आशावान होकर आई है । अन्दर से आवाजें आ रही हैं–

स्वामीजी–हूँ ! बच्चा बताओ तुम कौन हो ? भय मत करो ! हाँ, हाँ, बोलो.... !

इन्द्रा बेन [वह स्वयं नहीं, उसके अन्दर का प्रेत]-हूँ-हूँ-हूँ-हूँ- ।

स्वामीजी– हूँ हूँ क्या करता है ? गूंगा है क्या ? बोल नहीं तो फिर पछतायगा ।

प्रेत–हूँ- हूँ- हूँ SS.... !

अन्दर का प्रेत केवल हूँ हूँ करता है । अन्य कुछ नहीं बोल रहा है । फिर भी स्वामीजी कितनी मीठी आवाज में उसे समझा रहे हैं कि बच्चा बोल, घबरा मत आदि । थोडी देर चुप्पी रहती है । परन्तु स्वामीजी समझ जाते हैं कि सीधी अंगुली से घी नहीं निकलेगा, इस लिए कुछ और विधि करते हैं । थोडी ही देर में इन्द्राबेन को लगा हुआ प्रेत बड़बड़ाना शुरु करता है ।

प्रेत—हाँSS । ऐसा मत कर....चला जा यहाँ से महाराज ! तुम चला जा !

स्वामीजी— ऐसे नहीं....इस प्रकार बोल कि चला जाता हूँ । अभी जा रहा हूँ । ....बोल जाता है कि नहीं ?

प्रेत— हूँ- हूँ- हूँ- हूँ SS.... ।

स्वामीजी धीरे से शिवलाल को बाहर जाने का इशारा करके ॐ, ॐ, ॐ का जप करते हैं। ज्यों ज्यों वे अपने स्वर में तीव्रता लाते हैं, त्यों त्यों प्रेत की चिल्लाहट बढ़ती जाती है ।

बरामदे का दरवाजा खोलकर शिवलाल काका बाहर आ जाते हैं । लेखक काका से अन्दर का हाल पूछता है ।

काका—अरे मारवाड़ी (लेखक), तुझे क्या बताऊँ ? यह तो बड़ा भयंकर केस है । इन्द्रा बेन की आँखो की तरफ कोई देख नहीं सकता ऐसी बड़ी बड़ी शोले की तरह जलती हुई आँखें हो रही है । कोई भारी प्रेत नजर आ रहा है ।

अन्दर से पुनः जोर जोर से आवाजें आना शुरु हो गई हैं-

प्रेतः हा-हा-चला जा महाराज ! मुझे तंग मत कर, चला जा SS !

स्वामीजी— हाँ बच्चू, अब पता चलेगा । बोल, तू कौन है ? आँखें निकाल कर तू मुझे डराना चाहता है ? (तीव्र स्वर में) हाSS, हाSS, हाSS ।

अब लगता है स्वामीजी ने अपना रुद्र रूप दिखाना शुरु कर दिया है । उनके गले की जोरों की आवाज से अच्छे से अच्छे साहसी भी कांप जाते हैं ।

स्वामीजी—बोल जाता है कि नहीं ? हाSSS ! बोल ! कर दूँ भस्म ? ले.... !

स्वामीजी की तीव्र आवाज से आश्रम में खड़े इधर उधर के सभी लोग यहाँ आकर इकट्ठे हो जाते हैं।

प्रेत—चला जाऊँगाSS । चला जाऊँगाSS ।

स्वामीजी-चला क्या जाऊँगा, अभी जा ! मैं समझता था कि तू चुप चाप चला जायगा, पर तू अपनी हेकडी लगाता है । बोल अब क्या इरादा है ? या अभी और रहने की इच्छा है ?

प्रेत—(रोते हुए स्वर में) नहीं, अभी जाता हूँ....अभी जाता हूँ....अभी जाता हूँ SSS ।

इन्द्रा बेन ऊँची ऊँची सांसे लेकर अभी जाताहूँ....अभी जाता हूँ कहती जा रही है । स्वामीजी ॐ ॐ ॐ का उच्चार कर रहे हैं ।

प्रेत—लो, मैं जा रहा हूँ.... । यह देखो ।

स्वामीजी शिवलाल को आवाज दे रहे हैं । शिवलाल काका दौड़ कर अन्दर जाते हैं । सब उत्सुक होकर दरवाजे की तरफ देख रहे हैं । थोड़ी देर में अन्दर से शिवलालकाका इन्द्रा बेन को सहारा देकर ला रहे हैं। उसको लेजाकर काका एक कमरे में बिठा देते हैं । इन्द्रा बेन अब अपने पूरे होश में है और स्वामीजी का एक फोटू जो कमरे में पड़ा है । लेकर आपही आप उसको देख देखकर बोल रही है—

इन्द्राबेन–हाँ ! महाराज तुम्हो हो, आप ही हो । आज मेरे जीवन को शांति मिली है । (रोती हुई) मुझे क्या हो गया था ? मेरी कैसी हालत हो गई थी ?....आह ! हे भगवान ! हे मेरे पूज्य महाराज । मैं कितनी दुखी थी ? (अपने शरीर को देखकर) हाँ, हाँ, मुझे याद आ रहा है । दो तीन बार आप ही (चित्र को देखकर) हाँ ! आप ही थे जिन्होंने सपने में मुझे दर्शन दिये थे । इतने समय बाद आपने मेरा दुःख दूर किया है । होऽऽ हो ऽऽऽ।

इन्द्रा बेन भाव विह्वल होकर रोने लगी है । शिवलाल एक गिलास में उसे पीने के लिये पानी देते हैं और कहते हैं—

शिवलाल काका–लो यह पानी पी लो । अब सब ठीक हो गया है । धीरज रखो । लो, पी लो यह पानी ।

इन्द्रा बेन पानी लेकर पीती है ।

इन्द्राबेन–हाँ ! परसों आपने (स्वामीजी ने) मुझे प्रसाद दिया था खाने को, तभी से मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही थी कि अब मेरा दुःख चला जायगा । ओह मै इतने दिन तक कहाँ थी ?

इन्द्रा बेन के भाई से लेखक पूछता है कि इनको कब से ऐसा दुख था ? वह कहता है-"क्या बताऊँ आपको हम तो इसका विचित्र सा व्यवहार देखकर सोचते थे कि इनका दिमाग ही ऐसा है । इनको कोई भूत वूत नहीं लगा है, बल्कि वहम घुस गया है । आज इनको अपनी स्वाभाविक अवस्था में देखकर मन को बहुत शांति मिल रही है । लगभग १२ वर्ष तक प्रेत ने

इनको परेशान किया है !"

XX XX XX

रात्रि के ८ बजे हैं । आश्रम के प्राङ्गण में स्वामीजी के सम्मुख कृष्णभाई, शिवलाल काका, भाणा भाई, नाथाभाई, लेखक आदि १०-१२ भक्त गण खड़े हैं ।

कृष्णभाई–स्वामीजी ! इन्द्रा बेन को कौन सा भूत लगा था ? हमें सुनने की बड़ी उत्सुकता है ।

स्वामीजी–कृष्णभाई ! यह तो पंजाब की तरफ का भूत था । आश्चर्य है कि १२ वर्ष तक वह उसके शरीर को अपना घर बनाकर रह रहा था और इलाज कोई अचूक नहीं होने के कारण ये लोग उसको वहम ही मान रहे थे । भूत प्रेतों की कई जातियाँ होती हैं । उनका संसार ही बिलकुल अलग होता है । यह भूत बहुत शक्तिशाली था । तुमने देखा होगा कि मैंने शिवलाल को भी बाहर भेज दिया था थोडी देर के लिये ।

लेखक–हाँ स्वामीजी ! काका भी बाहर आ गए थे ।

स्वामीजी–वह इसलिये कि वह बहुत उग्र रूप धारण कर रहा था । १२ वर्ष का जमाया हुआ घर छोड़ना बड़ा मुश्किल होता है ! लाल आँखें करके वह इतनी उग्रता बता रहा था जैसे मेरे पर ही हावि हो जाय ! और इसमें कोई आश्चर्य नहीं हो कृष्णभाई ! ऐसे कई केस होते मैंने देखे हैं । ऐसे ही एक ओझा ने भूत निकाल था । वह निकल तो गया परन्तु उस ओझा से वह

ज्यादा शक्ति शाली था, इसलिए उस ओझा के शरीर में घुस गया। उसको पेट दर्द और दस्ते शुरू हो गई और ३ घण्टे के अन्दर ही उसका अपनी जान से हाथ धोना पड़ा मैंने भी ऐसा प्रसङ्ग आज ही देखा है जब कि मुझे उसको निकालने में जरा परिश्रम करना पड़ा।

कुछ दिन पहले एक कमला नाम की माई को भी ऐसा ही भूत लगा था। उसने अपना नाम सैयद बताया था। जब वह माई सत्संग हेतु आश्रम में आने की इच्छा करती तो वह विघ्न पैदा कर देता। उसको इधर आने ही नहीं देता था। इस प्रकार के कई प्रसङ्ग यहाँ आये हुए भक्तों के बन जाते हैं। उनसे अपना सत्संग का समय भी कई बार खराब हो जाता है, परन्तु उनकी दयनीय अवस्था मुझसे देखी नहीं जाती और यह इलाज विलाज करना ही पड़ता है।

कृष्णभाई— ये तो बडी ही विचित्र बातें हैं, स्वामीजी !

स्वामीजी--अरे, सब ठीक है। अपना मनोबल मजबूत रखना चाहिये। फिर कोई चिंता नहीं रहेगी। अपने आपको जानो। देह के साथ तो कई व्याधियाँ लगी ही रहेगी। मैं आत्मा हूँ, ऐसा चिंतन करो। फिर सब ठीक हो जायगा।

●

प्रकाशक——श्री योगवेदान्त सेवा समिति,

मोटेरा आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद।

मूल्य ७० पैसा.

"इस बालक को आप सामान्य पुत्र रूप में नहीं समझें। यह बालक भविष्य में महान संत बनकर कई लोगों को जन्म जन्मान्तर के कष्टों से छुड़ाएगा।" ये शब्द उस तीन वर्ष के बालक 'आसुमल' को देखकर उसके पिता श्री थाहुमल को उनके कुलगुरु ने कहे थे। बालक के बारे में की गई भविष्यवाणी समय आनेपर सत्य सिद्ध हुई और आबू व हिमालय की गुफाओं एवं नर्मदा के किनारे सात वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् आत्मसाक्षात्कार करके बचपन के वही आसुमल अब 'परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज' के नाम से साबरमती नदी के किनारे आश्रम में आए हुए भक्तों को पिछले तीन वर्षों से वैदिक तत्वज्ञान का उपदेश करते हुए नजर आ रहे हैं।

उनके चेहरे पर झलकता दिव्य तेज और वेदान्त जैसे विषय पर उनका अधिकार स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ की याद दिला देते हैं। उनके ही मुखारविन्द से भक्तों के सम्मुख सहज प्रसृत वाणी के कुछ अंशों को यहाँ लिपिबद्ध किया गया है।

निवेदक - श्री योग वेदांत सेवा समिति